साप्ताहिक
Live not just breaTHE

MPHIN/2015/63220
MP/IDC1528/16-18

दि कार्मिक पोस्ट

वर्ष : 6, अंक : 32 (प्रति बुधवार), इन्दौर, 31 मार्च से 6 अप्रैल 2021 पेज : 8 कीमत : 3 रुपये

वनों के सर्वश्रेष्ठ संरक्षक हैं आदिवासी– एफएओ

आदिवासी लोग क्षेत्र में 32 से 38 करोड़ हेक्टेयर जंगल की सुरक्षा करते हैं, बदले में जंगल लगभग 3,400 करोड़ मीट्रिक टन कार्बन स्टोर करते हैं

कोलंबिया।

येरुमंगुई के युवा लोग कोलंबिया के कोका घाटी में घिरे जंगलों में सामुदायिक वन प्रबंधन के बारे में जानकारी लेते हुए फोटो- एफएओ, येरुमंगुई के युवा लोग कोलंबिया के कोका घाटी में घिरे जंगलों में सामुदायिक वन प्रबंधन के बारे में जानकारी लेते हुए खाद्य और कृषि संगठन की नई रिपोर्ट के अनुसार, जिन क्षेत्रों में आदिवासी रहते है वहां वनों के कटने की दर काफी कम है। दुनिया भर की सरकारों ने सामूहिक रूप से आदिवासी लोगों को भूमि के अधिकारों को लेकर औपचारिक मान्यता दी है।

रिपोर्ट में कहा गया है कि पिछले दो दशकों में प्रकाशित 300 से अधिक अध्ययनों की समीक्षा के आधार पर, लैटिन अमेरिका में स्वदेशी, आदिवासी/जनजातीय और कैरेबियाई लोगों का वनों के सर्वश्रेष्ठ संरक्षक होने का पहली बार पता चला है। शोध यह भी बताता है कि उनकी वनों के प्रति सुरक्षात्मक भूमिका अब उनके लिए खतरा पैदा करने लगी है, ऐसे समय में जब अमेज़ॅन वन एक जलवायु टिपिंग पॉइंट के बहुत करीब है। दुनिया भर में बदलती जलवायु से वर्षा और तापमान प्रभावित हो रहा जिसका असर खाद्य उत्पादन और उसके नतीजों पर पड़ेगा। एफएओ के क्षेत्रीय प्रतिनिधि, जूलियो बर्डुगुए ने कहा कि स्वदेशी और आदिवासी लोगों तथा उनके क्षेत्रों के जंगल दुनिया भर में जलवायु में हो रहे बदलाव का मुकाबला करने और गरीबी से लड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लैटिन अमेरिका और कैरिबियन के उष्णकटिबंधीय जंगल दुनिया भर में 14 प्रतिशत कार्बन संग्रहीत करते हैं। सबसे अच्छे परिणाम इनके स्थानीय क्षेत्रों में देखे गए हैं, 2000 से 2012 के बीच, बोलीविया, ब्राजील और कोलंबियाई अमेज़ॅन के इन क्षेत्रों में वनों की कटाई की दर दूसरे सामान पारिस्थितिक विशेषताओं वाले जंगलों की तुलना में केवल आधे से एक तिहाई थी। फाइरा के अध्यक्ष मुना कनिंघम ने कहा कि अमेज़ॅन घाटी में बरकरार जंगलों का लगभग आधा (45 प्रतिशत) आदिवासी बहुल प्रदेशों में हैं। वन संरक्षण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका का प्रमाण स्पष्ट दिखता है। इस क्षेत्र के आदिवासी क्षेत्रों में 2000 से 2016 के बीच जंगल में केवल 4.9 प्रतिशत की गिरावट आई है, जबकि गैर-आदिवासी क्षेत्रों में यह गिरावट 11.2 प्रतिशत है। रिपोर्ट सरकारों को उन परियोजनाओं में निवेश करने के लिए कहती है, जो कि उनकी भूमिका को बढ़ावा दें, जिसे जनजातीय लोग वनों की सुरक्षा करके निभाते हैं। आदिवासी बहुल क्षेत्र कार्बन कम उत्सर्जित करते हैं रिपोर्ट में किए गए अध्ययनों के अनुसार, जिन जगहों पर आदिवासी रहते हैं वहां वनों की कटाई की दर कम है, बोलीविया में ऐसे क्षेत्रों की तुलना में वनों की कटाई 2.8 गुना कम, ब्राजील में 2.5 गुना और कोलंबिया में 2 गुना कम है। इन तीन देशों में हर साल 42.8 से 59.7 मिलियन मीट्रिक टन सीओ2 उत्सर्जन कम होता है, जो कि 90 लाख से 1.26 करोड़ वाहनों के उत्सर्जन के बराबर है। ये ऐसे क्षेत्र है जिनका सामूहिक रूप स्वामित्व आदिवासी लोगो के हाथ में हैं। आदिवासी लोगों द्वारा उपयोग की जा रही 40.4 करोड़ हेक्टेयर में से, सरकारों ने औपचारिक रूप से अपनी सामूहिक संपत्ति या लगभग 26.9 करोड़ हेक्टेयर से अधिक उपयोग करने की मान्यता दी है। रिपोर्ट में कहा गया है कि जीवाश्म कार्बन कैप्चर, कोयले और गैस से चलने वाले बिजली संयंत्रों दोनों के सीओ 2 भंडारण में लगने वाली औसत लागत की तुलना में आदिवासी भूमि को सुरक्षित करने की लागत 5 से 42 गुना कम है। जनजातीय लोग क्षेत्र में 32 से 38 करोड़ हेक्टेयर जंगल की सुरक्षा करते हैं, जो लगभग 3,400 करोड़ मीट्रिक टन कार्बन स्टोर करते हैं, जो कि इंडोनेशिया या कांगो के सभी जंगलों से अधिक है। 2003 से 2016 के बीच अमेजन घाटी के आदिवासी संरक्षित क्षेत्रों के जंगलों ने 0.3 प्रतिशत से कम कार्बन खोया था, जबकि गैर-आदिवासी संरक्षित क्षेत्रों ने 0.6 प्रतिशत खो दिया। ऐसे क्षेत्र जो न तो आदिवासी बहुल क्षेत्र थे और न ही संरक्षित क्षेत्र वहां के जंगलों ने 3.6 प्रतिशत कार्बन खो दिया था। नतीजतन भले ही आदिवासी बहुल क्षेत्र अमेज़ॅन घाटी के 28 प्रतिशत को कवर करते हैं, उन्होंने 26 प्रतिशत क्षेत्र के सकल कार्बन उत्सर्जन का केवल 2.6 प्रतिशत उत्पन्न किया है। रिपोर्ट के निष्कर्ष यह भी बताते हैं कि स्वदेशी और आदिवासी लोग जैव विविधता की सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। (साभार)

मार्च में मध्य प्रदेश में गर्मी ने दिखाए तीखे तेवर

भोपाल। वर्तमान में किसी वेदर सिस्टम के सक्रिय नहीं रहने और हवाओं का रुख पश्चिमी, उत्तर पश्चिमी बना रहने से राजधानी सहित प्रदेश के अधिकांश मध्यप्रदेश में अधिकतम तापमान में बढ़ोतरी हो रही है। राजधानी सहित रीवा, सतना, उमरिया, जबलपुर, छतरपुर, सागर, दमोह, धार, रतलाम, दतिया, ग्वालियर एवं गुना में लू चली। राजधानी भोपाल का अधिकतम तापमान 41.0 डिग्री सेल्सियस दर्ज किया गया। जो कि सामान्य से पांच डिग्री सेल्सियस अधिक रहा। प्रदेश में सबसे अधिक तापमान 43 डिग्री सेल्सियस खजुराहो में दर्ज किया गया। मंगलवार को भोपाल का न्यूनतम तापमान 20.0 डिग्री सेल्सियस रिकार्ड किया गया। यह सामान्य से एक डिग्री सेल्सियस अधिक रहा। साहा के मुताबिक बुधवार से अधिकतम तापमान में कुछ कमी आ सकती है। मौसम विज्ञान केंद्र के मौसम विज्ञानी पीके साहा ने बताया कि वर्तमान में कोई वेदर सिस्टम सक्रिय नहीं है। हवाओं का रुख भी लगातार पश्चिमी और उत्तर पश्चिमी बना हुआ है।

केन-बेतवा नदी जोड़ो परियोजना, अभी भी सवालों में बनी रहेगी

मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के बीच केन बेतवा नदी परियोजना को लेकर समझौता हो चुका है, लेकिन कई बड़े सवाल बाकी हैं

भोपाल। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की मौजूदगी में केन-बेतवा लिंक परियोजना को लागू करने के लिए पानी के बंटवारे को लेकर मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश के बीच चले आ रहे विवाद का समाधान हुआ और एक आपसी सहमति पर संधि हुई है। ऐतिहासिक बताए जा रहे इस समझौते में केंद्रीय जल शक्ति मंत्री गजेंद्र सिंह शेखावत की मध्यस्थता में मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान व उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने संधिपत्र पर हस्ताक्षर किए। पानी के बंटवारे पर दो प्रदेशों के बीच हुए इस संधि पत्र में हालांकि उन पर्यावरणीय सवालों पर कोई बात नहीं है जो समय-समय पर उठते रहे है और जिसे लेकर सर्वोच्च न्यायालय की सेंट्रल एम्पावर्ड कमिटी ने अपने अंतिम निष्कर्ष और सिफ़ारिशों के रूप में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष पेश 2019 को पेश की थी।

30 अगस्त 2019 को केन वेतबा नदी जोड़ो परियोजना (केन वेतबा रिवर लिंकिंग प्रोजेक्ट) को लेकर सर्वोच्च न्यायालय की सेंट्रल एम्पावर्ड कमिटी ने जो अपने अंतिम निष्कर्ष और सिफारिशें पेश की थीं, उनकी गंभीरता को देखते हुए यह समझना मुश्किल है कि इस परियोजना को आगे बढ़ाने की दिशा में इस समझौते के क्या मायने हैं?उस समय यह माना गया था कि अगर सुप्रीम कोर्ट इन निष्कर्षों पर गंभीरता से विचार करता है तो तो यह तय है कि अटल बिहारी वाजपेयी के समय तैयार हुई इस महत्वाकांक्षी परियोजना पर पूर्ण विराम लग जाना चाहिए। इसका व्यापक असर अन्य नदी -जोड़ो परियोजनाओं पर भी पड़ना तय माना जा रहा था। हालांकि 22 मार्च को हुई इस संधि व समझौते की खबर के पीछे सेंट्रल इम्पावर्ड कमिटी की सिफ़ारिशों को छिपा लिया गया है। यह खबर भी अभी नहीं है कि इन सिफ़ारिशों पर देश के सर्वोच्च न्यायालय ने क्या कदम उठाए। सीईसी (सेंट्रल इम्पावर्ड कमिटी) के अवलोकनों और इसके द्वारा उठाए गए सवालों पर गौर करें तो देश में परियोजनाओं को लेकर बरती जाने वाली असावधानियां व अविवेकपूर्ण ढंग से इन परियोजनाओं को दी जाने वाली 'हरी झंडियों' पर गंभीर प्रश्न खड़े होते हैं। उम्मीद जताई जा रही थी कि सुप्रीम कोर्ट सीईसी के अध्ययन व पड़ताल के आधार पर दिये गए निष्कर्षों को संज्ञान में लेते हुए न केवल इस परियोजना को रद्द करेगा बल्कि परियोजना को तमाम तरह के क्लीयरेंस देने वाली जिम्मेदार संस्थाओं को भी दोषी मानेगा। सीईसी (सेंट्रल इम्पावर्ड कमिटी) ने अपने अध्ययन के आधार पर परियोजना के लगभग हर पहलू पर अपने अवलोकन दिये थे। यह फेहरिस्त लंबी है। इसमें केन नदी में पानी की उपलब्धता के भ्रामक व अस्पष्ट आंकलन से लेकर दो राज्यों के बीच पानी के बंटबारे में मौजूद अस्पष्ट व दोषपूर्ण समझौते व बढ़ा-चढ़ाकर पेश किए गए लाभ (सिंचाई) के दावे शामिल हैं। इसके अलावा परियोजना के उद्देश्यों को लेकर किसी वैकल्पिक तरीके पर विचार न किए जाने की कवायद, लागत -लाभ का भ्रामक और अपूर्ण मूल्यांकन, पन्ना टाइगर रिज़र्व जैसे संवेदनशील वन्य क्षेत्र को लेकर बेहद गैर-जिम्मेदार रवैया, केन घड़ियाड़ अभ्यारण्य पर होने वाले प्रभावों की उपेक्षा, गिद्धों व अन्य प्रकार के सरसृप जीवों के पर्यावास की आपराधिक अनदेखी और समृद्ध जैव-विविधता पर होने वाले दुष्प्रभावों को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ किये जाने पर तो गंभीर आपत्तियाँ जताई थीं। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण पहलू पर गहन अध्ययन करते हुए सीईसी ने राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड (केन्द्रीय बोर्ड ऑफ वाइल्ड लाइफ) की पूरी कार्य-शैली को कटघरे में खड़ा किया है। यही वो जिम्मेदार संस्था है जिसने वन्य जीवों के पर्यावास पर इस परियोजना के कारण किसी भी तरह की हानि न होने की पुष्टि करते हुए 23 अगस्त 2016 को अनापत्ति दी। सुप्रीम कोर्ट में यह मामला भी इसी अनापत्ति को लेकर पहुंचा। जिस पर सामाजिक व पर्यावरण कार्यकर्ता मनोज मिश्रा ने सवाल उठाए थे। बाद में सुप्रीम कोर्ट ने इसकी पड़ताल के लिए ही सीईसी की नियुक्ति की थी। हालांकि ये सारी आपत्तियाँ जो सीईसी ने उठाई हैं, केन नदी के साफ पानी के नीचे सहज ही दिखलाई दे जाने वाली रेत या पत्थरों की तरह देश के पर्यावरणविदों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और स्थानीय निवासियों को शुरू से ही दिखलाई पड़ रहीं थीं। सीईसी ने तो केवल परियोजनाओं को स्वीकृति देने में बरती गयी गंभीर और आपराधिक लपरवाहियों को भी अपनी रिपोर्ट में दर्ज़ किया है पर हमारी स्मृतियों में तत्कालीन जल संसाधन मंत्रालय की मंत्री उमा भारती की वह अहमक़ हठधर्मिता मौजूद है जब उन्होंने इस परियोजना को पर्यावरण स्वीकृति की प्रक्रिया पर 31अगस्त 2017 को यह कहते हुए दबाव बनाया था कि अगर पर्यावरण स्वीकृति देने में ढील बरती गयी तो वह आमरण अनशन करेंगीं। सीईसी ने प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण स्वीकृति की प्रक्रिया पर तो नहीं लेकिन इस जलवायु क्षेत्र विशिष्टता पर अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि 'इस भौगोलिक क्षेत्र में मौजूद जैव विविधतता,नैसर्गिक गुफाएँ, पेड़ों की विशेष प्रजातियाँ, सैकड़ों प्रकार की घास, झरने,केन नदी के किनारे की जैव विविधतता से समृद्ध वनस्पती व तमाम जल जीवों आदि के पर्यावास के रूप में जाना जाता है। अगर यह परियोजना स्थापित होगी तो हम इस नैसर्गिक संपदा को हमेशा के लिए खो देंगे'। इसके अलावा एक और टिप्पणी यहाँ बहुत महत्वपूर्ण है जो सीईसी ने राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड द्वारा इस परियोजना को मंजूरी दिये जाने के निर्णय पर सवाल करते हुए की है कि - राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड ने स्वयं सुप्रीम कोर्ट द्वारा एक अन्य फैसले में दिये निर्देश को नज़रअंदाज़ किया जिसमें कोर्ट ने कहा है कि --किसी भी परियोजना को स्वीकृति देते समय इस बात को अनिवार्य रूप से तवज्जो देना चाहिए कि हमारी कोशिश (एप्रोच) इको-सेंट्रिक हो न कि एंथ्रोपोसेंट्रिक यानी पारिस्थितिकी केन्द्रित हो न कि केवल मानव-केन्द्रित। इसके साथ ही यह भी ध्यान दिये जाने की ज़रूरत है कि उस पर तमाम प्रजातियों के मानक नैसर्गिक हित सुरक्षित हो रहे हैं कि नहीं।क्योंकि सभी प्रजातियों को धरती पर रहने के समान अधिकार हैं। यह एक मामूली सी समझ की बात रही है कि यह परियोजना केवल बड़े ठेकेदारों, कंट्रेक्टरों, इंजीनियरों, नौकरशाहों और अंतत- राजनेताओं के बीच 'धन बनाने' के लिए लायी गयी है। इतनी समझ तो इन क्षेत्रों के स्थानीय निवासी भी रखते हैं कि केन और बेतवा दोनों नदियां एक ही जलवायु क्षेत्र में आस-पास मौजूद हैं। इस लिहाज से जिस साल उस जलवायु क्षेत्र में जैसा मानसून होगा और जैसी बारिश होगा उसका समान असर दोनों नदियों पर होगा। यानी जब केन में बढ़ आएगी तो बेतवा में भी बाढ़ ही आएगी और केन सूखी होगी तो बेतवा भी सूखी होगी। इसलिए यह बात शुरू से ही अवैज्ञानिक व तथ्यहीन थी कि केन में प्रचुर मात्रा में पानी होगा लेकिन बेतवा सूखी होगी। इसलिए इस परियोजना के माध्यम से 'नदी-जोड़ो' के पीछे जो भी तस्व्वुर थे वो धराशायी हो जाते थे। क्या वाकई इतनी सी बात देश के नीति नियंताओं को समझ में नहीं आ रही थी? पीपुल साइंस इंस्टीट्यूट से जुड़े पर्यवारणविद रवि चोपड़ा इस तरह की परियोजनाओं को एक 'लतीफे' की तरह देखते हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा है कि - ये ख्याल ही बेतुका है कि हिंदुस्तान में नदियों को आपस में जोड़ने से बाढ़ या सूखे जैसी स्थितियों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। असल में नदियों को लेकर हमारी समझ साफ नहीं है। नदी-जोड़ो के ख्याल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर बात करते हुए वो बताते हैं कि इसका ख्याल सबसे पहले एक एयर पायलेट को 1960 के आस-पास आया था जिसका नाम कैप्टन डसतुर था, जिसे बाद में जाने माने सिविल इंजीनियर के. एल. राव ने 'गारलेंड कनाल' के रूप में पेश किया। उनका मानना था कि देश में नदियों की एक मालानुमा संरचना होना चाहिए ताकि पानी को सहेजा जा सके और जरूरत के हिसाब हर क्षेत्र को पानी मुहैया हो सके। इस अवधारणा पर रवि चोपड़ा का स्पष्ट मानना है कि देश में गंगा नाम की जो नदी है वो इसी गारलेंड की भूमिका निभा रही है। इसे ही तो साफ रखने की ज़रूरत है जो सरकारों से हो नहीं रहा है। केंद्र में अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्रित्व काल में एनडीए की पूर्णकालिक सरकार ने इस ख्याल को ठोस रूप देते हुए सबसे पहले केन-बेतवा को जोड़ने की परियोजना पर काम शुरू किया था। 2005 में इस परियोजना पर मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश की सरकारों के बीच समझौता हुआ था। इन सिफ़ारिशों से एक उम्मीद स्थानीय निवासियों को जागी है कि उनका यह पर्यावरण सुरक्षित रहेगा और ऐसी विनाशकारी परियोजना को ठंडे बस्ते में डाल दिया जाएगा। यह बहुत अजीब था कि इतनी महत्वाकांक्षी परियोजना से उन्हें कोई लाभ नहीं था जिन्हें अपने प्राकृतिक संसाधनों से हमेशा के लिए महरूम कर दिया जाना था। हालांकि इस रिपोर्ट में इस समृद्ध क्षेत्र में रह रहे आदिवासियों व जंगल निवासियों के लिए कुछ नहीं कहा गया और ये शायद सीईसी के दायरे में नहीं था लेकिन अभी भी ये मूल सवाल ज्यों के त्यों बने हुए हैं कि पन्ना टाइगर रिजर्व से विस्थापितों को सही पुनर्वास नहीं मिला है। इस बात से भी स्थानीय लोगों में खुशी है कि केन-बेतवा से पन्ना टाइगर रिजर्व का एक तिहाई हिस्सा डूब जाने वाला था शायद वो बच जाएगा जिसका सीधा प्रभाव उनकी बस्तियों पर पड़ेगा और उन्हें विस्थापित नहीं होना पड़ेगा। ज्ञात हो कि इस डूब क्षेत्र की भरपाई के लिए पन्ना टाइगर रिज़र्व के दायरे को बढ़ाने की योजना थी और उसका बफर ज़ोन व्यापक किया जाना था। इसके लिए लगभग 2 गाँव, नगरों को विस्थापित किया जाना था। एक सवाल जो सीईसी ने नहीं उठाया था वो है इस पूरे इलाके में वन अधिकार कानून का लंबित क्रियान्वयन। सौंर, कोल, मवासी, भीलजैसे आदिवासी समुदाय आज भी इस कानून के क्रियान्वयन की राह देख रहे हैं ताकि उन्हें गरिमापूर्ण जीवन जीने की सांवैधानिक गारंटी मिले। इस पहलू पर और विस्तार से समझने की गंभीर ज़रूरत है।

(साभार)

जानवरों की जान ले रहा है पीपीई वेस्ट

बैंगलुरु। दुनिया भर में कोरोना महामारी से बचने के लिए बड़े पैमाने पर व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरणों (पीपीई) जैसे दस्ताने और मास्क का प्रयोग किया जा रहा है। इसने जहां एक तरफ लोगों की इस महामारी से सुरक्षा की है वहीं साथ ही इस बढ़ते कचरे के रूप में एक नई समस्या को भी जन्म दे दिया है। आज इससे पैदा हुआ कचरा दुनिया भर के लिए समस्या बन चुका है। शोध से पता चला है कि यह कचरा न केवल जमीन पर रहने वाले जीवों बल्कि पानी में रहने वाले जीवों को भी प्रभावित कर रहा है। जमीन और पानी में रहने वाले जीव न केवल इसमें उलझे पाए गए बल्कि कई बार इनकों निगलने के मामले भी सामने आए हैं।

यह तब शुरु हुआ जब शोधकर्ताओं ने पहली बार लीडेन की नहर में एक मछली को लेटेक्स से बने दस्ताने में उलझा पाया। यह पहला मामला था जब नीदरलैंडस में कोई जीव कोरोना के कचरे में उलझा पाया गया था। इसके बाद तो जब वैज्ञानिकों ने इस बारे में जानकारी एकत्र करना शुरु कि तो उनके पास इसके कई सबूत सामने आए। उन्होंने ब्राजील से लेकर मलेशिया तक कई देशों में और सोशल मीडिया से लेकर स्थानीय अखबारों और अंतर्राष्ट्रीय समाचार वेबसाइटों तक का अवलोकन किया जिससे इस बारे में ज्यादा से ज्यादा जानकारी प्राप्त हो सके। उन्हें पता चला कि यूके में लोमड़ी, कनाडा में पक्षी, हेजहॉग, सीगल, केकड़े और चमगादड़ तक कई तरह के जीव इन मास्क में उलझे पाए गए थे। जहां बंदरों के इन मास्क को चबाने के मामले सामने आए वहीं पेंगुइन के शरीर में भी फेस मास्क मिले थे। यही नहीं पालतू जानवर विशेषकर कुत्तों के भी मास्क को निगलने के मामले सामने आए थे। इस शोध से जुड़े शोधकर्ता लिसलोटे रेमबोनेट ने बताया कि जीवों के पेट में प्लास्टिक फंसने के कारण वो भूखे रह जाते हैं और कमजोर पड़ जाते हैं। वहीं बायोलॉजिस्ट ऑक-फ्लोरियन हैम्स्ट्रा के अनुसार कोरोना के कचरे से प्रभावित जीवों में काफी विविधता पाई गई है। न केवल धरती पर रहने वाले जीव बल्कि पानी में रहने वाले जीव भी इस कचरे में उलझे पाए गए थे। वहीं कई बार पक्षियों को इस वेस्ट को अपने घोसले के लिए भी इस्तेमाल करते हुए पाया गया था। उदाहरण के लिए नीदरलैंड्स में कूट्स पक्षियों को अपने घोसले के लिए फेस मास्क और दस्ताने का उपयोग करते पाया गया था। वहीं कई बार पक्षियों को इस वेस्ट को अपने घोसले के लिए भी इस्तेमाल करते हुए पाया गया था। उदाहरण के लिए

नीदरलैंड्स में कूट्स पक्षियों को अपने घोसले के लिए फेस मास्क और दस्ताने का उपयोग करते पाया गया था। हैम्स्ट्रा के अनुसार यह इसलिए भी मायने रखता है क्योंकि कई जानवरों में भी कोविड-19 के लक्षण सामने आए हैं। हाल ही में किए गए एक अन्य शोध से पता चला है कि वैश्विक स्तर पर हर वर्ष औसतन 12,900 करोड़ फेस मास्क और 6500 करोड़ दस्तानों का उपयोग किया जा रहा है, जिसका मतलब है कि हर मिनट में 30 लाख फेस मास्क उपयोग किए जा रहे हैं। इनमें से ज्यादातर मास्क प्लास्टिक माइक्रोफाइबर से बने होते हैं जिन्हें एक बार इस्तेमाल करके फेंक देने के लिए बनाया गया है। ऐसे में इस कचरे का ठीक तरह से निपटान बहुत मायने रखता है। हाल ही में हांगकांग के सोको आइलैंड पर सिर्फ 100 मीटर की दूरी में 70 मास्क पाए गए थे, जबकि यह एक निर्जन स्थान है। आप अनुमान लगा सकते हैं कि दुनियाभर में इसका कितना कचरा फैला हुआ है। यदि इन्हें ऐसे ही खुले में फेंक दिया जाता है तो यह न केवल स्वास्थ्य अपितु अन्य जीवों के स्वास्थ्य के लिए एक बड़ा खतरा है।

प्रयागराज के कूड़े ने दर्जन भर गांवों को नर्क बनाया

इलाहाबाद (प्रयागराज) शहर से प्रतिदिन लगभग 600 टन कूड़ा निकलता है। इसका निस्तारण शहर से दस किलोमीटर दक्षिण की ओर, यमुना नदी के किनारे मेसर्स हरीभरी द्वारा स्थापित कूड़ा निस्तारण प्लांट में होता है। इसके ठीक बगल में घनी बस्ती वाला बसवार गांव है जिसमें मुख्यत- निषाद, नाई, यादव, गड़ेरिया और अनुसूचित जातियों के लोग रहते हैं। इसमें कुल सात हजार मतदाता हैं। प्लांट से उठती असहनीय दुर्गंध, मच्छरों, मक्खियों, अपरिचित कीड़ों, त्वचा और सांस से संबंधित बीमारियों के प्रकोप ने ग्रामीणों का जीना दूभर कर दिया है। लगभग तीन किलोमीटर दूर तक बसे अन्य गांव भी बीमारियों की जद में आते नजर आ रहे हैं।

इलाहाबाद एक प्राचीन पारम्परिक, धार्मिक शहर है जहां हर वर्ष माघ मेला में लाखों श्रद्धालु इकट्ठा होते हैं। वहीं छह वर्ष के अंतराल पर अर्ध कुम्भ और बारह वर्ष में महाकुम्भ का आयोजन होता है। देश के कोने-कोने से करोड़ों श्रद्धालु, दुकानदार, फेरीवाले गंगा-यमुना किनारे संगम में इकट्ठा होते हैं। इस समय शहर से निकलने वाले कचड़े की मात्रा में बेतहाशा वृद्धि हो जाती है। 2019 के अर्द्ध कुंभ से अनुमानित 20,000 टन कचड़ा बसवार में लाया गया था। डाउन टू अर्थ कल बसवार के हरी भरी प्रोसेसिंग प्लांट की स्थिति देखने पहुंचा तो प्लांट के गेट पर ही अनुमति न होने का हवाला देकर रोक दिया गया। शहर की ओर से हर पांच मिनट में कचड़े से लदे ट्रक प्लांट में आ रहे थे, सामने लगा कम्प्यूटर कांटा खराब पड़ा था। ट्रक बिना तौल के ही प्लांट में कचड़ा डंप कर रहे थे। प्लांट में कुछ जेसीबी मशीनें कूड़ा पलटते नजर आ रही थीं। हालांकि गेट पर दुर्गंध के बीच बिना किसी सुरक्षा कवच के मौजूद दो सुरक्षा गार्डों ने बताया कि अंदर कचरा निस्तारण का काम चल रहा है। प्लांट के पीछे से जाकर जब हमने देखने की कोशिश की तो दूर तक फैला कूड़े के ढेर का शुरुआती हिस्सा तो दिख रहा है लेकिन अंत नजर नहीं आता। ग्रामीण बताते हैं कि लगभग पचीस से तीस बीघे में कचड़े का पहाड़ फैला है। प्लांट की गंध से तीन किलोमीटर तक बसवार, मड़उका, मोहब्बतगंज, अमिलिया, बकसी, करहन्दा, मोहद्दीनपुर, मुरलीपुर, बंधवा, सेमरा जैसे कई गांव प्रभावित हैं। हमारी मुलाकात बसवार के गुलज़ार निषाद (51) से हुई। गुलज़ार के हाथों में मच्छरों के काटने से बड़े-बड़े फफोले पड़ गए हैं और अब उनमें मवाद भर गया है। वह बताते हैं कि ÷जबसे कम्पनी के मच्छर आये हैं, उनके काटने पर खुजलाने के बाद फफोले निकल आते हैं। देखते ही देखते यह पक जाता है। बाजार से सौ-पचास रुपए की दवा लेने के बाद ही ठीक होता है। गांव में नई मक्खियां आ गई हैं। उनके काटने पर खून निकल आता है। जहां काटती हैं वहां बुद्दा (फफोला) बन जाता है। बसवार में इस विषय पर आम सहमति देखने को मिली कि कचड़ा प्लांट बसवार से हटना चाहिए। लेकिन इसी बीच कई गांवों में बसवार से कचरा प्लांट बंद होकर शंकरगढ़ में जाने की चर्चा भी तेज हो गई है। भैरव प्रसाद निषाद (60) बताते हैं कि रात में लाइट कटने पर बाहर सोना सम्भव नहीं। बच्चे पहले से ज्यादा बीमार हो रहे हैं। दिनभर में सैकड़ों गाड़ी कचरा आता है। सड़क दुर्घटना में कई लोगों की जान जा चुकी है। सुनने में आ रहा है कि कचरा प्लांट बंद होने वाला है लेकिन इतना कचरा बसवार में इकट्ठा हो चुका है कि यदि हटेगा तो कई साल लग जाएंगे। हाल ही में इलाहाबाद की महापौर अभिलाषा गुप्ता ने बसवार में कचड़े से डीजल बनाने वाले प्लांट का उद्घाटन किया है। ख़बरों की मानें तो हरी भरी एजेंसी प्लास्टिक के कचरे से डीजल, गैस और रद्दी कपड़े से कोयले का पाउडर बनाने के लिए दो टन क्षमता का प्लांट लगा चुकी है। इन चीजों के उत्पादन के लिए पायरोलाइसिस तकनीक का इस्तेमाल किया जाएगा। इसके तहत प्लास्टिक कचरे को 700 डिग्री सेंटीग्रेट पर गलाया जाएगा। इससे करीब 70 फीसद डीजल निकलेगा और बाकी की गैस बनेगी। प्लांट में प्रतिदिन लगभग 1,400 लीटर डीजल तैयार होने का अनुमान है। बसवार कूड़ा प्लांट का कई सालों से विरोध कर रहे भाजपा कार्यकर्ता संदीप निषाद (32) बताते हैं कि 2018 में कई गांवों के लगभग दो हजार लोगों ने प्लांट का विरोध किया था। गांव में अजीब-अजीब तरह के कीड़े आ गए हैं। गर्मी, बरसात में दीवारें मक्खियों से काली पड़ जाती हैं। मैं यह गांव छोड़ देना चाहता हू लेकिन गांव वाले कहां जाएंगे? संदीप आगे कहते हैं कि जहां तक रही बात कूड़ा प्लांट बंद होने की तो यह सूचना फर्जी है। अगर प्लांट बंद होना होता तो अभिलाषा जी बीस दिन पहले डीजल प्लांट का उद्घाटन न करतीं और न ही मरे हुए जानवरों को जलाने के लिए चिमनी बनाई जाती। आने वाले कल में बसवार की और बुरी दशा होने वाली है। शाम होते ही गांवों में गंध फैल जाती है। पुरुष बाजार की ओर चले जाते हैं। महिलाएं घरों के अंदर हो जाती हैं। जो बाहर दिखते भी हैं, वे हाथ से नाक बंद कर बाहर निकलते हैं। गांव वालों का कहना है कि बच्चों में बुखार, कालरा, मलेरिया और उल्टी-दस्त की बीमारी बढ़ गई है। गांव में अभी तक कई लोग कैंसर से जान गंवा चुके हैं। बसवार गांव की सावित्री देवी (50) बताती हैं कि इतनी जोर की गंध होती है कि खाना नहीं खा पाती। शाम को जब कूड़ा खोदने (पलटने) लगते हैं तो गंध बढ़ जाती है। पूरे गांव का पानी खराब हो रहा है। जमुना जी (यमुना नदी) में यहां का कचरा जा रहा है और उसका पानी भी खराब हो रहा है। वही गंदा पानी जानवर पी रहे हैं। **(साभार)**

शिक्षा पर महामारी के पड़ते प्रभाव को मापने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने जारी किया नया ट्रैकर

मुंबई। दुनिया भर में शिक्षा पर महामारी के पड़ते प्रभाव को मापने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने एक नया ट्रैकर जारी किया है जिसे जॉन्स हॉपकिन्स यूनिवर्सिटी, वर्ल्ड बैंक और यूनिसेफ के आपसी सहयोगी से बनाया गया है। यदि पिछले एक साल की बात करें तो कोरोना महामारी के कारण 160 करोड़ बच्चों की शिक्षा पर असर पड़ा है। यदि शिक्षा पर संकट की बात करें तो वो इस महामारी से पहले भी काफी विकट था। इस महामारी से पहले भी दुनिया भर में शिक्षा की स्थिति बहुत ज्यादा बेहतर नहीं थी। उस समय भी प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल जाने योग्य 25.8 करोड़ बच्चे स्कूल से बाहर थे।

वहीं निम्न और मध्यम आय वाले देशों में करीब 53 फीसदी बच्चों को शिक्षा नहीं मिल रही थी। जिसका मतलब है कि 10 वर्ष से बड़े करीब आधे बच्चे सामान्य से चीजों को लिख पढ़ नहीं सकते थे। वहीं उप-सहारा अफ्रीका में स्थिति और बदतर थी जहां यह आंकड़ा 90 फीसदी के करीब था। वहीं यदि उच्च आय वाले देशों में यह आंकड़ा 9 फीसदी था। जो स्पष्ट तौर पर शिक्षा में व्याप्त असमानता को दर्शाता है। इस महामारी ने शिक्षा पर छाए इस संकट को और बढ़ा दिया है। जिसका असर हमारी आने वाली पीढ़ी पर लंबे समय तक रहने की संभावना है। अप्रैल 2020 में जब महामारी और उसके कारण हुए लॉकडाउन के चलते स्कूलों को बंद किया गया था तब उसका असर 94 फीसदी छात्रों पर पड़ा था, जिनकी संख्या करीब 160 करोड़ थी। अनुमान है अभी भी करीब 70 करोड़ बच्चे अपने घरों से ही शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इसके बावजूद बड़ी संख्या में बच्चे हाइब्रिड और रिमोट लर्निंग के विकल्प के बीच संघर्ष कर रहे थे, जबकि कई शिक्षा से पूरी तरह वंचित थे। दुनिया के अधिकांश देश इस तरह की अनिश्चितता का सामना कर रहे थे।

51 देशों में खुल चुकें हैं स्कूल

ऐसे में हाल ही में लांच किया गया यह टूल 200 से भी अधिक देशों और क्षेत्रों में स्कूलों को दोबारा खोलने और उनके प्रबंधन में मदद कर सकता है। यह ट्रैकर चार प्रमुख क्षेत्रों से जुड़ी सूचनाओं को एकत्र करता और दिखाता है। क्या है स्कूली शिक्षा की स्थिति। सीखने के अलग-अलग तौर-तरीके इस्तेमाल हो रहे हैं जैसे घर पर शिक्षा, या स्कूल में आमने सामने और हाइब्रिड। शिक्षा की स्थिति में सुधार के उपायों की उपलब्धता। शिक्षकों के लिए वैक्सीन की उपलब्धता और उसकी स्थिति। यदि ट्रैकर से प्राप्त मार्च 2021 की शुरुआत तक के आंकड़ों को देखें तो 51 देशों में स्कूल खुल चुके हैं और बच्चे आमने-सामने शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। जबकि 90 से अधिक देशों में अन्य तरीकों से शिक्षा दी जा रही है। जहां कई स्कूल खुले हैं और कई अन्य तरीकों से बच्चों को शिक्षा दी जा रही है। यूनिसेफ के चीफ ऑफ एजुकेशन रॉबर्ट जेनकिंस के अनुसार दुनिया भर में वैक्सीन देने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। अभी भी दुनिया के लाखों करोड़ों बच्चों इस महामारी की समस्या से ग्रस्त हैं। ऐसे में यह जरुरी है कि स्कूलों को जल्द से जल्द खोलने के प्रयास किए जाएं। साथ ही एक बार जब स्वास्थ्य कर्मियों और उच्च जोखिम वाली आबादी को टीका लगा दिया जाता है तो शिक्षकों को भी वैक्सीन देने में प्राथमिकता देनी चाहिए। जिससे हम अगली पीढ़ी के भविष्य को सुरक्षित कर सकें।

नाइट्रोजन डाइऑक्साइड में मामूली वृद्धि भी बढ़ा रही मौतों के आंकड़े

मुंबई। नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (एनओ2) के स्तर में हुई मामूली सी वृद्धि भी हृदय और सांस सम्बन्धी मौतों के जोखिम में इजाफा कर सकती है। एक नए शोध से पता चला है कि यदि पिछले दिन की तुलना में प्रति घन मीटर 10 माइक्रोग्राम एनओ2 की वृद्धि होती है तो उससे मरने वाले की कुल संख्या में 0.46 फीसदी का इजाफा हो सकता है, जबकि इससे हृदय सम्बन्धी मौतों में करीब 0.37 फीसदी और सांस सम्बन्धी मौतों में 0.47 फीसदी का इजाफा हो सकता है। यह शोध 24 मार्च 2020 को ब्रिटिश मेडिकल जर्नल में प्रकाशित हुआ है।

नाइट्रोजन डाइऑक्साइड बहुत आम वायु प्रदूषक है जो आमतौर पर बिजली, परिवहन और उद्योगों आदि के लिए ईंधन जलाने से बनता है। हवा में इसकी मात्रा को माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर में मापा जाता है। माइक्रोग्राम, एक ग्राम का दसवां हिस्सा होता है। इस बाबत विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा जारी वायु गुणवत्ता सम्बन्धी दिशानिर्देशों को देखें तो हवा में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड का वार्षिक औसत स्तर 40 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर से ज्यादा नहीं होना चाहिए। इससे पहले भी कई शोधों में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले असर के बारे में जानकारी दी है, लेकिन वो अध्ययन बहुत ही छोटे अंतराल पर किए गए थे, साथ ही उन्हें किसी क्षेत्र विशेष में किया गया था जिस वजह से वो इसकी व्यापक तस्वीर प्रस्तुत नहीं हो पाई थी और परिणामों में अनिश्चितता बनी हुई थी। इस अनिश्चितता को दूर करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय शोधकर्ताओं की एक टीम ने दुनिया भर के कई देशों में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड की मात्रा और उसके हृदय और सांस सम्बन्धी मौतों के बीच के सम्बन्ध को समझने का प्रयास किया है। यह शोध 22 देशों के 398 शहरों पर किया गया था। यह शहर यूरोप, उत्तरी अमेरिका और एशिया के थे। जहां 45 वर्षों (1973 से 2018) की अवधि में नाइट्रोजन डाइऑक्साइड की दैनिक मात्रा को मापा गया था। इन शहरों में औसत तापमान और आर्द्रता सहित मौसम के दैनिक आंकड़ों को भी दर्ज किया गया था। इसके साथ ही इन देशों के अधिकारियों से मृत्यु सम्बन्धी रिकॉर्ड भी प्राप्त किए गए थे। जहां 45 वर्षों की अवधि में कुल 6.28 करोड़ मौते दर्ज की गई थी। जिनमें से 1.97 करोड़ या 31.5 फीसदी हृदय संबंधी और 55 लाख करीब 8.7 फीसदी सांस सम्बन्धी बीमारियों से जुड़ी थी। शोध से पता चला है कि यदि पिछले दिन की तुलना में प्रति घन मीटर 10 माइक्रोग्राम एनओ2 की वृद्धि होती है तो उससे मरने वाले की कुल संख्या में 0.46 फीसदी का इजाफा हो सकता है जबकि इससे हृदय सम्बन्धी मौतों में करीब 0.37 फीसदी और सांस सम्बन्धी मौतों में 0.47 फीसदी का इजाफा हो सकता है। यही नहीं अन्य वायु प्रदूषकों जैसे सल्फर डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, ओजोन और अन्य बारीक कणों की मात्रा में आए अंतर के बावजूद भी यह निष्कर्ष समान ही थे। ऐसे में शोधकर्ताओं का मानना है कि वायु गुणवत्ता सम्बन्धी दिशानिर्देशों को संशोधित करने और उन्हें ज्यादा कठोर करने की जरुरत है। **(साभार)**

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक सोनल मेहता केलिए प्रतीक्षा ग्राफिक्स, 127 देवी अहिल्या मार्ग, इंदौर (म.प्र.) से मुद्रित एवं 209-बी शहनाई रेसीडेंसी-2 कनाड़िया रोड इंदौर (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक: डॉ. सोनल मेहता फोन : 0731-2595008 Mail.sonal12mehta@yahoo.co.in 9755040008